द्वितीय अध्याय

"उपन्यास कला और अलका सरावगी के उपन्यास : स्वरूपगत विवेचन"

द्वितीय अध्याय

''उपन्यास कला और अलका सरावगी के उपन्यास : स्वरूपगत विवेचन''

विषय-प्रवेश :

वस्तुत: उपन्यास हिंदी साहित्य की ही नहीं तो विश्व साहित्य की लोकप्रिय, लोकप्रचलित तथा बहुचर्चित विधा है। उपन्यास मूलत: पश्चिमी साहित्य की देन है। आधुनिक हिंदी साहित्य में उपन्यास विधा एक शक्तिमान तथा महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में अनवरत प्रवाहमान रही है। यह विधा मनुष्य जीवन के विविध आयामों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती है। साथ ही अपने युगीन परिवेश को समग्र परिप्रेक्ष्यों का सर्जनात्मक रूपायन कर तत्कालीन यथार्थ और वास्तविक दस्तावेज को भी प्रस्तुत करती है। उपन्यास विधा का समग्रालोचन करने के उपरांत समीक्षक उस पर आदर्शवादी, यथार्थवादी तथा समाजवादी आदि एकांगी विचारों से सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। ये आलोचक तथा समीक्षक व्यक्तिगत धारणाओं से परिभाषित करने की भी कोशिश करते हैं -

2.1 उपन्यास की परिभाषा :

उपन्यास की परिभाषा अनेक विद्वानों ने की है लेकिन कोई भी परिभाषा आज तक सभी पहलुओं को न सीमाबद्ध कर पाई है और न सर्वांगीण हो पाई है। हर एक विद्वान द्वारा की गई परिभाषा एकांगी सिद्ध होती है। फिर भी कुछ विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ यहाँ प्रस्तुत हैं -

उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार करते हैं - ''मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खालना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।''[1] हिंदी के सुप्रसिद्ध आलोचक बाबू गुलाबराय उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार स्पष्ट करते हैं - ''उपन्यास कार्य-कारण श्रृंखला से बंधा हुआ वह गद्य कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक

---

1. प्रेमचंद - साहित्य का उद्देश्य, पृष्ठ - 54

वा काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।''[1]

गोविंद त्रिगुणायत 'उपन्यास' को इस तरह परिभाषित करते हैं - ''उपन्यास मानव-जीवन का वह स्वच्छ और गद्यमय चित्र है जिसमें मानव मन के प्रसादन की अद्भुत शक्ति के साथ-साथ उसके रहस्यों को उद्घाटन तथा उसके उन्नयन की विचित्र क्षमता भी होती है। उपन्यासकार यह कार्य सफल चरित्र-चित्रण के सहारे सम्पन्न करता है।''[2] 'उपन्यास' की परिभाषा बताते हुए डॉ. पारूकांत देसाई लिखते हैं - ''आधुनिक काल की वह गद्य विधा है जिसमें लेखक सामाजिक या वैयक्तिक यथार्थ का निरूपण अपनी स्वतंत्र जीवनदृष्टि को केंद्र में रखते हुए करता है।''[3]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि उपन्यास आधुनिक काल की वह गद्य विधा है जो कार्य-कारण श्रृंखलाबद्ध मानव जीवन का वास्तविक तथा काल्पनिक यथार्थ को उद्घाटित कर मानव उन्नयन की अपेक्षा रखती है और दिशा भी देती है।

2.1.1 उपन्यास की परिभाषा की दृष्टि से विवेच्य उपन्यासों का मूल्यांकन -

अलका सरावगी के उपन्यास वर्तमान काल की देन हैं। उनके उपन्यास कार्य-कारण श्रृंखला को बनाए नहीं रखते परंतु मानव कल्पना द्वारा वास्तविक यथार्थ को उद्घाटित करते हैं। साथ ही उन्नयन की कामना करते हैं और तत्संबंधी दिशानिर्देश का संकेत भी देते हैं।

2.2 उपन्यास का स्वरूप :

उपन्यास साहित्य संसार के विचारों, भावों तथा संकल्पों की शाब्दिक अभिव्यक्ति के साथ-साथ समाज के हित का साधन भी है। उपन्यास पश्चिमी साहित्य की देन है। उपन्यास को अंग्रेजी में 'Novel', मराठी में 'कादंबरी', गुजराती में 'नवल-कथा' और बंगला तथा हिंदी में 'उपन्यास' कहा जाता है। उपन्यास की व्याख्या है - 'उपन्यास : प्रसादनम्'। अर्थात् उपन्यास पाठकों को प्रसन्न करता है। उपन्यास कविता से बड़ा होता है। जहाँ कविता अपने विचार बतलाने में चुप होती हैं वहाँ उपन्यास तथा कहानी का जन्म होता है। उपन्यास का संबंध कविता की तरह कला या भाव जगत् से न होकर मनुष्य के प्रत्यक्ष जीवन से

1. बाबू गुलाबराय - काव्य के रूप, पृष्ठ - 170
2. गोविंद त्रिगुणायत - शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत (द्वितीय भाग), पृष्ठ - 412
3. डॉ.पारूकांत देसाई - हिंदी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास, पृष्ठ - 21

संबंधित होता है। उपन्यास तथा कहानी का संबंध गहरा या निकट का है किंतु आकार, प्रकार, प्रकृति, विचार तथा प्रवृत्ति की दृष्टि से उसमें अंतर दिखाई देता है। कहानी 2-3 पृष्ठ से लेकर 25-30 पृष्ठों तक होती है लेकिन उपन्यास 70-80 से लेकर 900-1000 पृष्ठों तक होता है। उपन्यास में सैकडों घटनाएँ होती है तुलना में कहानी एक ही घटना पर होती है। कहानी में मार्मिक प्रसंग या जीवन के किसी एक अंश का चित्रण होता है परंतु उपन्यास में समग्र जीवन का चित्रण होता है। कहानी में चरित्र की ज्यादा गुंजाईश नहीं होती अपितु उपन्यास में पूरे चरित्र का चित्रण तथा सूक्ष्म ब्यौरा प्रस्तुत किया जाता है। उपन्यास में पात्रों के अंतरंग तथा बहिरंग का चित्रण विस्तार से प्रस्तुत होता है लेकिन कहानी में पात्र का चित्रण कम मात्रा में दिखाई देता है। उपन्यास में कल्पनात्मकता, यथार्थात्मकता, गद्यात्मकता, चित्रणात्मकता तथा कलात्मकता आदि पर बल दिया जाता है। तुलना में कहानी में अत्यल्प मात्रा में ये प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। उपन्यास में व्यापक क्षेत्र का चित्रण होता है किंतु कहानी में सीमित क्षेत्र का चित्रण होता है।

इसी संदर्भ में डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त 'उपन्यास' के स्वरूप के बारे में लिखते हैं - ''उपन्यासकार को स्वयंनिर्णय करना होगा कि अधिकाधिक प्रभाव के लिए कथा किस शैली में प्रस्तुत की जाय, किस दृष्टिकोण से सम्पूर्ण कथा या उसका कोई अंश प्रस्तुत किया जाय। सभी उपन्यासों के लिए कोई एक नियम नहीं हो सकता लेकिन अपने विचारों और संदेश को अधिकाधिक प्रभावपूर्ण शैली में पाठकों तक पहुँचाने के लिए स्वयं ही उपन्यास लिखते समय कथा-उपस्थापन की शैली खोज निकालता है और उसमें यथावसर परिवर्तन करता है।''[1] स्पष्ट है कि उपन्यास में संपूर्ण जीवन का चित्रण करना है या किसी अंश का चित्रण करना है यह उपन्यासकार पर ही निर्भर होता है। साथ ही उपन्यास किस शैली में लिखना है यह भी लेखक पर ही निर्भर होता है। अत: योग्य विचार तथा उचित संदेश पाठकों तक पहुँचाकर परिवर्तन लाना ही उपन्यास है।

उपन्यास का स्वरूप स्पष्ट करते हुए डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त लिखते हैं - ''उपन्यास का फलक (canvas) विस्तृत होता है जिसमें मानव-जीवन की विविधताओं और जटिलताओं को इस प्रकार चित्रित किया जाता है कि जीवन और जगत् की विशेषताएँ स्पष्ट हो

1. डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त 'उपन्यास' - स्वरूप, संरचना तथा शिल्प, पृष्ठ - 60

जाती है और साथ ही लेखक के समसामयिक जीवन का भी परिचय प्राप्त हो जाता है क्योंकि लेखक समसामयिक सन्दर्भों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।''[1] उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि उपन्यास का स्वरूप मानव जीवन की विभिन्न जटिलता तथा विशेषताओं के साथ-साथ समसामयिक लेखकों का परिचय देता है। साथ ही समसामयिक संदर्भों से लेखक प्रभावित भी होता है। उपन्यास के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ. शंकर मुद्गल लिखते हैं - ''उपन्यास केवल काल्पनिक कथा नहीं है, उसका आधार यथार्थ है। उपन्यासकार केवल गगनविहार नहीं करता बल्कि उसकी कलम का आधार धरातल है। गद्य में रचित यह केवल काल्पनिक उड़ान नहीं है। इसकी उपज तो इसी धरती की मिट्टी से हुई है। जीवन और कला दोनों दृष्टिकोणों से आज उपन्यास की श्रेष्ठता सिद्ध हो गई है।''[2] स्पष्ट है कि उपन्यास भारतीय जमीन की उपज तो है ही साथ ही गद्य में रचित, जीवन और कला की काल्पनिक और यथार्थ उपज है।

निष्कर्ष यह कि उपन्यास का स्वरूप विशाल है जिसमें मानव जीवन और कला की काल्पनिक तथा यथार्थ अभिव्यक्ति होती है। साथ ही जीवन की जटिलता, कठिनाइयाँ, विशेषताएँ तथा समसामयिक लेखकों को प्रभावित करने की क्षमता भी होती है और अंत में विचार तथा संदेश देकर परिवर्तन की कामना भी करता हो।

2.2.1 उपन्यास के स्वरूप की दृष्टि से विवेच्य उपन्यासों का मूल्यांकन -

अलका सरावगी के उपन्यासों का 'फार्म' आधुनिक और प्रयोगात्मक है। ये उपन्यास 'फार्म' के स्तर पर पारंपरिक ढाँचे को तोड़ते हैं। विवेच्य उपन्यास मानव जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति के साथ ही जीवन की विभिन्न जटिलताओं, कठिनाइयाँ एवं समस्याओं को बाइपास कर समसामयिक को प्रभावित करने की क्षमता भी रखते हैं। अंत में स्वदेश प्रेम का संदेश या विचार देकर यह उपन्यास परिवर्तन की कामना भी करते हैं। इन उपन्यासों का कथा 'फार्म' स्वयंभू होने के कारण उनके उपन्यासों में नयापन दिखाई देता है। 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास के 'फार्म' के बारे में गौरीनाथन लिखते हैं - ''फार्म के स्तर पर तो पूरा उपन्यास आधुनिक और प्रयोगात्मक है और यह सराहनीय भी है।''[3] कहना आवश्यक नहीं कि 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास का ही नहीं बल्कि अलका सरावगी के सभी उपन्यासों का 'फार्म' प्रयोगात्मक, आधुनिक तथा नया है इसमें दो राय नहीं।

---

1. डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त - पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र, पृष्ठ - 376
2. डॉ. शंकर मुद्गल - महाकाव्यात्मक उपन्यासों का स्वरूप, पृष्ठ - 29
3. सं. राजेंद्र यादव - हंस, जनवरी, 1999, पृष्ठ - 128

2.3 उपन्यास के तत्व :

उपन्यास के आधुनिक रूप का विकास पाश्चात्य देशों में हुआ है परंतु कलात्मक मूल्यांकन करने के लिए पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किए हैं। फलत: अधिकांश पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने उपन्यास के छह तत्व स्वीकार किए हैं -

1. कथावस्तु या कथानक
2. पात्र या चरित्र-चित्रण
3. संवाद या कथोपकथन
4. देशकाल वातावरण
5. भाषा-शैली
6. उद्देश्य।

अब हम उनके उपर्युक्त उपन्यास तत्वों पर विचार-विमर्श करेंगे -

2.3.1 कथावस्तु या कथानक -

कथावस्तु को अंग्रेजी में 'plot' कहा जाता है। वस्तुत: उपन्यास शरीर है तो कथावस्तु उसका आत्मा। इस कथावस्तु के बीच एक कहानी मौजूद होती है। यह कहानी रचनाकार इतिहास, पुराण, जनश्रुति, विज्ञान और राजनीति आदि से ग्रहण करता है। यह कहानी लिखने की प्रेरणा तब मिलती है जब मनुष्य के अनुभव जगत् से मस्तिष्क में विचार या भाव अंकुरित होते हैं। यह कहानी कभी बाह्य घटना पर आधारित होती है तो कभी अंतर्मन से घटित होनेवाली हलचलों पर। डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त के मतानुसार - ''कहीं विस्तारपूर्ण, कहीं छोटी, कहीं सुगठित, कहीं बिखरी हुई, कहीं रोचक, कहीं बोझिल, कहीं जन-जीवन की बाह्य घटनाओं पर आधारित, तो कहीं अन्तर्मन में घटित होनेवाली हलचलों से सम्बद्ध। इसीलिए कहानी को उपन्यास की रीढ़ कहा गया है।''[1] कहना आवश्यक नहीं कि उपन्यास की कथा बाह्य तथा अंतर्मन से संबंधित घटनाओं पर आधारित होती है। साथ ही उपन्यास में चित्रित कहानी पर उपन्यास का भवन खड़ा होता है।

---

1. डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त 'उपन्यास' - स्वरूप, संरचना तथा शिल्प, पृष्ठ - 61

उपन्यास की सफलता मुख्यत: कथानक की क्रमबद्धता या कार्य-कारण श्रृंखला पर निर्भर होती है। क्षेमचन्द्र सुमन तथा योगेन्द्रकुमार मल्लिक का कहना है कि "कथा वस्तु में वर्णित प्रत्येक घटना परस्पर सम्बन्धित हो, क्रमगत हो और उनमें संगति हो, वे सब श्रृंखलाबद्ध हो।"[1] स्पष्ट है कि उपन्यास में कार्य-कारण श्रृंखला होनी आवश्यक है। श्रृंखल बद्धता के आधार पर ही उसके दो भेद होते हैं - एक सुव्यवस्थित और दो अव्यवस्थित। कथानक में मौलिकता, सत्यता, निर्माण-कौशल्य, सम्बद्धता, संभाव्यता, सुसंगठितता और नवीनता आदि गुण होना आवश्यक है। अत: इन गुणों के आधार पर ही कथानक की स्वाभाविकता - अस्वाभाविकता, श्रेष्ठता-अश्रेष्ठता, सशक्तता-असशक्तता और सफलता-असफलता निर्भर होती है। वर्ण्य-विषय की दृष्टि से कथानक प्रेम-प्रधान, तिलस्मी, जासूसी, इतिहास तथा पौराणिक आदि भागों में विभक्त होता है। साथ ही यह वर्ण्य-विषय सामान्य जीवन से भी संबंधित होता है। कथावस्तु का प्रधान तत्व है - जिज्ञासा तथा कौतुहल को बनाए रखना। मानव जीवन में आई हुई समस्या की व्याख्या करना, तत्कालीन युग तथा समाज जीवन का संकेत देना, मनुष्य जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण करना और मनुष्य-जीवन की अनुभूति की पूर्ण अभिव्यक्ति करना आदि कार्य उपन्यास के कथानक में होते हैं। कथानक के कई प्रकार भी होते हैं - कार्य-व्यापार प्रधान, करुणिक, चरित्र-प्रधान, घटना-प्रधान, भावप्रवण, त्रासद, विचार-प्रधान, शिक्षात्मक, मोहभंग, सुधारात्मक, परीक्षणात्मक और प्रौढ़ आदि। उपन्यास में जब कथानक परिपक्व होता है तब उसमें वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, पूर्वदीप्ति, डायरी और चेतना-प्रवाह आदि शैलियों का प्रयोग मिलता है। इस शैली वैविध्य के कारण कथानक या शिल्प के नए-नए आयाम व प्रयोग भी दिखाई देते हैं।

अंत में कहना सही होगा कि कथानक वह तत्व है जिसमें केंद्रीय रूप में सभी तत्व तो होते हैं जिनमें सुगठित, सुसंबद्ध तथा सुनियोजित कथा-विन्यास का होना भी अनिवार्य हो जाता है। कथानक में कार्य-कारण श्रृंखला, आरंभ से अंत तक कलात्मक विन्यास, पात्रों का आंतरिक तथा बाह्य संघर्ष जीवन के विविध अवस्थाओं का चित्रण और विभिन्न शैलियाँ भी विद्यमान होती है।

---

1. क्षेमचन्द्र 'सुमन', योगेन्द्रकुमार मल्लिक - साहित्य विवेचन, पृष्ठ - 175

2.3.2 पात्र या चरित्र-चित्रण -

उपन्यास का पूरा सृजन ही व्यष्टि और समष्टि का चित्र होता है। चरित्र को उपन्यास का मेरूदंड कहा जाता है। वस्तुत: पात्र लेखक की काल्पनिक तथा यथार्थ की उपज होते हैं। जब कथा वस्तु कार्य है तब पात्र कारण होते हैं और जब पात्र कार्य होते हैं तब कथावस्तु कारण होती है। उपन्यास मूलत: मानव चरित्र को उद्घाटित करता है। उपन्यास में पात्रों के आंतरिक और बाह्य दोनों पक्षों का चित्रण होता है। बाबू गुलाबराय पात्र या चरित्र को सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व मानते हैं । वह कहते हैं - ''उपन्यास का विषय मनुष्य है तो चरित्र-चित्रण उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्व है क्योंकि मनुष्य का अस्तित्व उसके चरित्र में है। चरित्र के ही कारण हम एक मनुष्य को दूसरे से पृथक् करते हैं। चरित्र द्वारा ही हम मनुष्य के आपे (Personality) को प्रकाश में लाते हैं। चरित्र में मनुष्य का बाहरी आपा और भीतरी आपा दोनों ही आ जाते हैं। बाहरी आपे में मनुष्य का आकार-प्रकार, वेश-भूषा, आचार-चित्रण, रहन-सहन, चाल-ढ़ाल, बातचीत के विशेष ढंग (तकिया कलाम, सम्बोधन आदि) और कार्य-कलाप भी आ जाता है। भीतरी आपा इन सब बातों से अनुमेय रहता है। पात्र के भीतरी आपे का चित्रण बाहरी आपे के चित्रण से कहीं अधिक कठिन होता है।''[1] कहना आवश्यक नहीं कि पात्र या चरित्र-चित्रण में पात्रों के आंतरिक और बाहरी आपे का चित्रण होता है। चरित्र-चित्रण के बाह्य व्यक्तित्व में आकार, रूप, वेशभूषा, आचरण, बातचीत और ढंग आदि का चित्रण होता है तो आंतरिक पक्ष में मानसिक तथा बौद्धिक विशेषताओं का चित्रण होता है।

उपन्यास के चरित्र-चित्रण के संबंध में डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त कहते हैं - ''किसी भी सफल चरित्र-चित्रण के लिए मानव-स्वभाव का सामान्य ज्ञान, मनुष्य के अन्तर्मन का परिचय, उसके भावों, विचारों, रागद्वेषों, अंत:संघर्षों की जानकारी के अतिरिक्त सहानुभूति, कल्पना-शक्ति तथा वर्ग विशेष की जानकारी अपेक्षित है।''[2] स्पष्ट है कि सफल चरित्र-चित्रण में मानव स्वभाव के अन्तर्मन, अंत:संघर्ष के साथ-साथ वर्ग विशेष का भी चित्रण होता है। लेखक उपन्यास में पात्रों की निर्मिति कर अपना प्रतिपाद्य प्रस्तुत करता है। उपन्यास में चरित्र को स्पष्ट करने की दो विधियाँ हैं - एक प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक चित्रण विधि और

---

1. बाबू गुलाबराय - काव्य के रूप, पृष्ठ - 178
2. डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त - पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत, पृष्ठ - 367

दूसरी अप्रत्यक्ष चित्रण-विधि। चरित्र-चित्रण में पात्र के सजीव, संगत, स्वाभाविक, प्रभावशाली, सप्राणता, मौलिकता तथा अनुकूलता आदि गुण होते हैं। कथानक की दृष्टि से पात्रों के प्रधान पात्र अथवा गौण पात्र आदि दो भेद किए जाते हैं। आलोचकों ने पात्रों का वर्गीकरण करते समय चार भेद किए हैं - व्यक्तिप्रधान, वर्ग-प्रधान, स्थिर तथा गतिशील आदि। सफल उपन्यासकार अपने उपन्यासों में मुख्य रूप में तीन प्रणालियों का चित्रण करता है - वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक और नाटकीय आदि। आधुनिक काल में चरित्र-चित्रण की प्रक्रिया अत्यंत सूक्ष्म और कलात्मक बन गई है। हर रचनाकार का अमर पात्र उसकी अमरत्व का द्योतक है।

संक्षेप में कहना सही होगा कि पात्र या चरित्र-चित्रण में प्रत्यक्ष पात्र या अप्रत्यक्ष पात्रों का चित्रण होता है। आंतरिक और बाह्य व्यक्तित्व की विशेषताएँ भी चरित्र-चित्रण में होती है। पात्र या चरित्र सृष्टि में पात्रों को प्रधान पात्र या गौण पात्र के रूप में विभाजित कर उसे वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक तथा नाटकीय प्रणालियों में चित्रित किया जाता है जिसका वर्गीकरण व्यक्ति, वर्ग, स्थिर और गतिशीलता के आधार पर होता है।

2.3.3 **संवाद या कथोपकथन** -

पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप को कथोपकथन कहते हैं। कथोपकथन का प्रयोग कथानक को गति देने, पात्रों के चरित्र को उजागर करने, समाज की वर्ग-विशेष की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालने तथा वातावरण की सृष्टि करने हेतु किया जाता है। डॉ. दंगल झाल्टे के शब्दों में - ''उपन्यास में कथानक के विकास, चरित्रों की व्याख्या, वातावरण निर्मिति तथा उपन्यासकार के विशिष्ट दृष्टिकोण आदि का रूपायन करने के उद्देश्य से ही संवाद की योजना की जाती है।''[1] स्पष्ट है कि कथोपकथन कथानक का विकास तथा चरित्रों की व्याख्या के साथ-साथ अनेक उद्देश्य पूर्ति हेतु किया जाता है। कथोपकथन के द्वारा घटना में नाटकीयता तथा सजीवता आ जाती है। कथोपकथन की सहायता से घटनाओं में कार्य -कारण श्रृंखला आबद्ध रहती है। संवादों के द्वारा ही पात्रों के बौद्धिक और मानसिक स्थिति को अनुकूल रखा जाता है। चरित्र-सृष्टि की व्याख्या का मुख्य साधन संवाद योजना या कथोपकथन ही है। विचारों-भावों तथा संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए कथोपकथन

1. डॉ. दंगल झाल्टे - उपन्यास समीक्षा के नए प्रतिमान, पृष्ठ - 71

बड़े कारगर सिद्ध होते हैं। गोविंद त्रिगुणायन कथोपकथन की कारगर सिद्धता के बारे में कहते हैं - ''उसका सीधा संबंध पात्रों से और चरित्र-चित्रण से है। पात्रों के भाव-विचार और संवेदनाओं को व्यक्त करने, उनकी क्रिया-प्रतिक्रिया के पीछे छिपी प्रेरणाओं (Motives) के चित्रण में तथा उनके एक दूसरे पर पड़े संस्कारों को अभिव्यक्त करने में कथोपकथन बड़े कारगर सिद्ध होते हैं।''[1] स्पष्ट है कि पात्रों के भाव, विचार तथा संवेदना के साथ-साथ एक-दूसरे पर पड़े प्रभाव से कथोपकथन कारगर सिद्ध होते हैं। कथोपकथन की भाषा और विषय पात्रानुकूल तथा प्रसंगानुकूल होना चाहिए। पात्र व्यक्तित्व में अनुकूल कथोपकथन परिस्थिति के अनुरूप, मौलिक, रोचक, स्वाभाविक, संगत, नाटकीय, सरल तथा स्पष्ट होने अनिवार्य है। कथोपकथन तब श्रेष्ठ होते हैं जब पात्र की परिस्थिति और बौद्धिक विकास अनुकूल होता है। कथोपकथन में स्वाभाविकता, सजिवता, सरलता, रोचकता, प्रसंगानुकूलता, सार्थकता, संक्षिप्तता, उद्देश्यपूर्णता, उपयुक्तता और संबद्धता आदि गुण होते हैं। फलत: कथोपकथन आकर्षक, मनोरंजक, परिहास जनक तथा संगत बन जाते हैं। उपन्यास में प्रयुक्त संवाद स्थल-काल के अनुकूलता तथा प्रतिकूलता का भी संकेत देते हैं।

अंतत: कहना गलत नहीं होगा कि कथोपकथन या संवाद कथावस्तु को गति देने, पात्रों के व्यक्तित्व को उजागर करने या वातावरण की सृष्टि करने के साथ-साथ संक्षिप्तता, सजीवता, स्वाभाविकता, सार्थकता, उद्देश्यपूर्णता, उपयुक्तता, रोचकता, सरलता, संबद्धता, भावात्मकता और विचारात्मकता आदि गुणों से युक्त होने चाहिए।

2.3.4 **देशकाल वातावरण** -

उपन्यासों में स्वाभाविकता, वास्तविकता तथा सजीवता का आभास देने के लिए देशकाल वातावरण की सृष्टि का निर्वाह किया जाता है। वस्तुत: देशकाल वातावरण उपन्यास में वास्तविकता की वृद्धि करता है। देशकाल वातावरण में विभिन्न परिस्थितियाँ तथा समाज की कुरीतियों का चित्रण होता है। देशकाल वातावरण में सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक आदि विशेषता तथा कुरीतियों का चित्रण होता है। इसी संदर्भ में क्षेमचन्द्र सुमन तथा योगेन्द्रकुमार मल्लिक के मतानुसार - ''देशकाल तथा वातावरण के अन्तर्गत आचार-

---

1. गोविंद त्रिगुणायत - शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (द्वितीय भाग), पृष्ठ - 422

विचार, वातावरण, रीति-रिवाज, रहन-सहन और राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन आ जाता है। सामाजिक उपन्यासों में विभिन्न समस्याओं का चित्रण का अवसर रहता है। इन सब समस्याओं का चित्रण करते हुए भी उपन्यासकार को पात्रों की और घटनाओं के घटित होने की परिस्थिति, काल और वातावरण का चित्रण करना पड़ता है।''[1] स्पष्ट है कि देशकाल वातावरण में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थिति के साथ-साथ उस समय के रीति-रिवाज, रहन-सहन तथा आचार-विचार आदि का वर्णन किया जाता है। देशकाल वातावरण के दूवारा किसी समस्या की वास्तविकता, उसका समाधान तथा क्रिया-प्रतिक्रिया का सही मूल्यांकन किया जाता है। किसी एक देशकाल में अनुकूल होनेवाला वातावरण दूसरी जगह प्रतिकूल हो सकता है। देशकाल वातावरण में सामाजिक परिवेश महत्त्वपूर्ण होता है। डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त कहते हैं - ''सामाजिक परिवेश उस देश तथा काल के आचार-विचार, व्यवहार, रीति-रिवाज, वेशभूषा, सभ्यता आदि से समन्वित किया जाता है।''[2] उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट होने में देर नहीं लगती कि सामाजिक परिवेश में देश तथा काल के साथ-साथ आचार-विचार, व्यवहार, रीति-रिवाज, वेशभूषा तथा सभ्यता का चित्रण होता है। देशकाल वातावरण में सामाजिक वातावरण के साथ-साथ ऐतिहासिक वातावरण भी महत्त्वपूर्ण होता है। डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त ऐतिहासिक वातावरण की आवश्यकता के संबंध में कहते हैं - ''ऐतिहासिक उपन्यास में सामाजिक परिवेश निर्मित करने में अधिक सजगता की आवश्यकता होती है। क्योंकि उसमें युग-विशेष को ध्यान में रखकर देश के परिप्रेक्ष्य में कथानक और पात्र संयोजित किए जाने चाहिए। लेखक को उस युग के रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेशभूषा आदि की इतिहास के माध्यम से पूर्ण छान-बीन करके उन्हें अपने सर्जनात्मक प्रतिभा से प्रस्तुत करना चाहिए तभी उसकी कृति में पूर्णता एवं प्रभावान्विति आ पाएगी।''[3] कहना आवश्यक नहीं कि ऐतिहासिक वातावरण में तत्कालीन युगविशेष, रीति-रिवाज, वेशभूषा तथा रहन-सहन आदि का चित्रण करने पर सर्जनात्मक प्रतिभा का निर्माण हो सकता है। इसके अलावा देशकाल वातावरण में महानगरीय, राजनीतिक, प्राकृतिक, आर्थिक तथा सांप्रदायिक आदि वातावरण के कई प्रकार उपन्यास में हो सकते हैं। आंचलिक उपन्यासों में तो देशकाल वातावरण मानो प्राणतत्व ही है। कई बार उपन्यास में वातावरण का चित्रण पात्र की मानसिकता पर व्यंजित

---

1. डॉ. क्षेमचंद्र 'सुमन' तथा योगेंद्रकुमार मल्लिक - साहित्य विवेचन, पृष्ठ - 183
2. डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त - पाश्चात्य साहित्यशास्त्र, पृष्ठ - 382
3. वही, पृष्ठ - 382

होता है। देशकाल के बिना पात्रों का व्यक्तित्व तथा अस्तित्व भी स्पष्ट नहीं होता। मानवीय क्रिया-प्रतिक्रिया के दूवारा देशकाल वातावरण का उचित निर्वाह किया जाता है। देशकाल वातावरण के कारण ही उपन्यासों में वास्तविकता तथा यथार्थता आती है।

अंत में कहना सही होगा कि देशकाल वातावरण में देश तथा काल का चित्रण होता है। साथ ही उसके अंतर्गत सामाजिक, ऐतिहासिक, आर्थिक, धार्मिक, महानगरीय तथा राजनीतिक वातावरण का चित्रण किया जाता है। समाज में होनेवाले रीति-रिवाज, वेशभूषा, खान-पान, व्यवहार, सभ्यता तथा संस्कृति आदि का चित्रण भी देशकाल वातावरण में होता है।

2.3.5 भाषा-शैली -

रचनाकार अपने भावों एवं विचारों को भाषा के माध्यम से सरल एवं सरस अभिव्यक्ति देता है। भाषा तथा भाषा से निर्मित होनेवाली शैली पर ही उपन्यास की सफलता निर्भर होती है। उपन्यास में सरसता, रोचकता तथा भावुकता को प्रकट करने का काम भाषा-शैली करती है। भाषा-शैली की सफलता उसमें होनेवाले विविध आयामों पर निर्भर होती है। डॉ. प्रतापनारायण टंडन सफल भाषा के बारे में लिखते हैं - ''सफल भाषा वही होती है जो उपन्यास की कथा, काल और पात्रों के अनुरूप हो। उसमें स्थानीय मुहावरों और लोकोक्तियों का भी यत्र-तत्र उपयोग हो जिससे उसकी प्रवाहशीलता नष्ट न हो। भाषा में अन्य गुणों के अविर्भाव के लिए सजग शब्दावली का उपयोग और भावानुकूलता होनी चाहिए। प्रसंगों के अनुसार वाक्यों की लम्बाई का निर्धारण होना चाहिए। सामान्यत: छोटे और गठे हुए वाक्य भाषा की सफलता में सहायक होते हैं। इसी प्रकार से उपन्यास में भिन्न-भिन्न प्रसंगों और स्थलों पर भाषा में रूपगत परिवर्तन भी होना चाहिए। सामान्य वर्णन, कथोपकथन या अन्य प्रसंगों के अनुसार भाषा के स्वर में भी न्यूनाधिक परिवर्तन किया जा सकता है।''[1] स्पष्ट है कि भाषा, कथा, काल और पात्र के अनुरूप, प्रवाहशील, भावानुकूल, प्रसंग तथा स्थलों के अनुसार भाषा में रूपगत परिवर्तन होना जरूरी है। उपन्यास में भाषा की एक स्वतंत्र सत्ता होती है। डॉ. दंगल झाल्टे के शब्दों में - ''उपन्यास में भाषा की स्वतंत्र सत्ता होकर उसकी स्थिति

---

1. डॉ. प्रतापनारायण टंडन - हिंदी उपन्यास कला, पृष्ठ - 235

निश्चित रूप से मध्यवर्ती हो गई है। अत: भाषा को उपन्यास के एक मूल्यांकन सर्जक तत्त्व के रूप में परखकर उसके आधार पर उपन्यास का मूल्यांकन करना नई समीक्षा का दायित्व है।''[1] कहना आवश्यक नहीं कि उपन्यास में भाषा स्वतंत्र अस्तित्व रखती है जिसके कारण वह आज एक मूल्यांकन का सर्जक तत्व बन गया है। उपन्यास की भाषा-शैली प्रसाद, मधुर तथा कभी-कभी ओज गुणों से भी युक्त होनी चाहिए। साथ ही भाषा में स्वाभाविकता, पात्रानुकूलता तथा प्रसंगानुकूलता होना भी अनिवार्य है। भाषा-शैली में संस्कृत, अंग्रेजी, अरबी तथा फारसी आदि शब्दों का प्रयोग यथावश्यक होता है। साथ ही भाषा में कहावतें, मुहावरे, लोकगीत, बिंब, प्रतीक आदि का भी प्रयोग यथायोग्य होना तथा आवश्यक है जिसके कारण भाषा की कलात्मकता बढ़ती है। भाषा पात्रों की मानसिकता को प्रभावशाली बनाकर उसके अंतर का उद्घाटन करती है, साथ ही क्रिया-कलापों का सजीव अंकन भी करती है।

रचनाकार जब अपने भावों एवं विचारों को रेखांकित करता है तब उसमें एक विशिष्ट शैली भी दिखाई देती है। शैलियों के कई प्रकार हैं, जैसे - वर्णनात्मक, मिश्रित, मनोविश्लेषणात्मक, भावात्मक, पत्रात्मक, डायरी, कथात्मक, फ्लैश बैक, टेलीफोन, प्रश्नार्थक, हास्य-व्यंग्यात्मक तथा चेतना-प्रवाह आदि। भाषा-शैली एक ऐसा तत्व है जो उपन्यास के सभी अंगों में समान रूप में व्याप्त रहता है। शैली विषय के अनुरूप तथा जीवन की अभिव्यक्ति करनेवाली होनी चाहिए। भाषा-शैली में सरलता, रोचकता, प्रवाहपूर्णता, आकर्षकता, नवीनता, प्रभावशाली, सफलता तथा प्रवाहमयता आदि गुण यथायोग्य होने चाहिए।

निष्कर्षत: कहना सही होगा कि भाषा विचार और भाव से युक्त होती है। वह विषय, काल तथा पात्र के अनुरूप भी होती है। विभिन्न प्रकार के शब्दों का भी उचित निर्वाह होता है। कहावतें, मुहावरे तथा लोकगीत का भी प्रयोग भाषा में होना चाहिए। प्रसाद तथा माधुर्य गुण के साथ-साथ सरलता, रोचकता, प्रवाहपूर्णता, आकर्षकता, नवीनता तथा प्रवाहमयता आदि गुण भाषा-शैली में होते हैं। शैली के कई प्रकार भी मिलते हैं। अंत में भाषा-शैली में विभिन्न शब्द, भाषा के विभिन्न आयाम तथा शैली के विभिन्न प्रकार भी परिलक्षित होते हैं जिसके कारण उपन्यास में कलात्मकता आती है।

---

1. डॉ. दंगल झाल्टे - नए उपन्यासों के नए प्रयोग, पृष्ठ - 132

2.3.6 उद्देश्य -

वस्तुत: उपन्यास आधुनिक युग के साहित्य के सभी अंगों को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। उद्देश्य तत्व उपन्यास का अनिवार्य तत्व है। डॉ. दंगल झाल्टे उपन्यास में उद्देश्य का अनन्य साधारण महत्त्व बताते हुए कहते हैं - "साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा जीवन और जगत् की विविध स्तरीय अनुभूतियों का चित्रण करने का माध्यम उपन्यास ही है। हर उपन्यास की सर्जना के पीछे उसके रचनाकार विशिष्ट उद्देश्य अथवा दृष्टिकोण अवश्य निहित रहता है चाहे वह उद्देश्य मनोरंजन करने का हो या अस्तित्व का बोध कराने का हो। उपन्यासकार का उद्देश्य कल्पनानुसार, भावनापरक, प्रयोगाधिष्ठित अथवा बौद्धिक आदि किसी भी प्रकार का हो सकता है। उस पर कोई भी पाबन्दी नहीं हो सकती। किन्तु चाहे जिस प्रकार का क्यों न हो, उपन्यास में उद्देश्य तत्व अवश्य उपस्थित रहता है।"[1] स्पष्ट है कि उपन्यास उद्देश्य कौन-सा होना चाहिए इसका बंधन तो नहीं होता किंतु उद्देश्य तत्व उपन्यास का अनिवार्य तत्व है।

प्रारंभ में उपन्यास का मूल उद्देश्य अतिरंजित चित्रण तथा उत्सुकता द्वारा चतुर्वर्ग की प्राप्ति या मनोरंजन करना था। साथ ही जीवन की ललक, शक्तिमान व्यक्तित्व का रूपायन की प्रगाढ़ इच्छाशक्ति, स्वच्छ समाज एवं राष्ट्र के निर्माण की प्रामाणिकता का चित्रण, सुधारवादी दृष्टिकोण तथा सामाजिक समस्या का यथार्थ चित्रण को प्रश्रय देने हेतु ही उपन्यास का सृजन किया जाता था। प्रेमचंद काल में इस रंजक तत्व में परिवर्तन आकर कृषकों, श्रमजीवियों तथा समाज के निम्नस्तर के लोगों का दु:खमय, कष्टमय और दर्दभरे जीवन को यथार्थ अभिव्यक्ति देने के लिए उपन्यास का सृजन किया जाने लगा। प्रेमचंदोत्तर काल में उद्देश्यों में और भी परिवर्तन दिखाई देने लगा है। जीवन दर्शन की विराटता का स्पष्टीकरण या विशिष्ट जीवन दृष्टि या जीवन दर्शन का चित्रण करना ही उपन्यास का प्रधान उद्देश्य है। साथ ही चरित्र का विश्लेषण, उपदेश का प्रचार, सौंदर्य की सृष्टि, गंभीर जीवन तथा सिद्धांतों को स्वाभाविक रूप से स्पष्ट करना, सामाजिक समस्या का यथार्थ चित्रण करना, मानव मन के मूलभूत भावों, अंतर्वर्गों, नैतिक सिद्धांतों की अभिव्यक्ति करना, मनुष्य के उत्थान तथा पतन का चित्रण करना और लेखक की मान्यताएँ तथा विश्वास को स्पष्ट कर

---

1. डॉ. दंगल झाल्टे - उपन्यास समीक्षा के नए प्रतिमान, पृष्ठ - 77

जीवन के अनुभूत सत्य दूसरों तक पहुँचाना आदि उद्‌देश्यों की पूर्ति हेतु आज उपन्यास के सृजन हो रहे हैं। तत्वपर विस्तार से विचार व्यक्त करते हुए डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त कहते हैं - ''उपन्यास जीवन का चित्र होता है और उपन्यासकार अपनी कृति में स्त्री-पुरूष, उनके सम्बन्धों, विचारों, भावनाओं, अन्तर्वर्गों, सुख-दुःख, संघर्ष, सफलता-असफलता आदि का चित्रण करता है। ऐसा करते समय उसके यह नितान्त कठिन है कि वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अपने ऊपर पड़नेवाले प्रभावों को या जीवन की विभिन्न समस्याओं के प्रति अपने दृष्टिकोण को व्यक्त न करे।''[1] उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि उपन्यास का उद्‌देश्य एकांगी न होकर विविधांगी होता है। उपन्यास में नाटकीय प्रणाली द्‌वारा तथा पात्रों के कथोपकथन द्‌वारा विचारों, आदर्शों और जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति की जाती है। आज उपन्यासकार व्यक्तिगत मान्यताओं तथा आस्थाओं, विचारों, विश्वासों, अपने युग और समाज को उसकी मोह-निद्रा से झंझोड़कर उठा देने का दृढ़ संकल्प कर देता है। उपन्यास में मानव जीवन के चरित्र को प्रस्तुत करता है। साथ ही उसका सजीव एवं स्वाभाविक चित्रांकन भी करता है। मानव के गुण-दोषों का चित्रण करना, मानव जीवन का सही मूल्यांकन करना और मनुष्य जीवन के विविध पहलुओं को परखना ही उपन्यास सृजन का उद्‌देश्य रहता है।

अंत में कहना सही होगा कि उपन्यास का मनोरंजन या आनंद प्राप्ति का उद्‌देश्य तो होता ही है। साथ ही समाज में परिवर्तन करने और अपने युग के मानव की काया पलटने के लिए ही उपन्यास सृजन का प्रधान लक्ष्य होता है। आधुनिक काल में उपन्यास कला जीवन के लिए उद्‌देश्यपूर्ति हेतु लिखे जाते हैं। मनुष्य का संबंध वर्तमान बौद्‌धिक जगत् से है। बौद्‌धिकता के कारण भागदौड़ के जमाने में यंत्रयुग के मानव की अनेक समस्या को लेखक अपने उपन्यासों के माध्यम से वाणी देता हो तो वह अपने साहित्यिक धर्म को निभाता है इसमें संदेह नहीं। उपन्यास का प्रणयन कला या आनंद के साथ-साथ यथार्थ धर्मिता से भी है। अत: मनुष्य जीवन का चित्रण करना ही उपन्यास का प्रधान उद्‌देश्य है इसमें दो राय नहीं।

1. डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त - पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्‌धांत, पृष्ठ - 371

2.3.7 उपन्यास के तत्वों की दृष्टि से विवेच्य उपन्यासों का मूल्यांकन -

अलका सरावगी के उपन्यास तत्वों की दृष्टि से एक नया प्रयोग है, जिसका कलात्मक मूल्यांकन यहाँ प्रस्तुत है -

2.3.7.1 कथानक या कथावस्तु की दृष्टि से विवेच्य उपन्यासों का मूल्यांकन :-

अलका सरावगी के उपन्यास कथानक की दृष्टि से पारंपरिक ढाँचे को तोड़नेवाले है। विवेच्य उपन्यास लीक से हटकर है। उनका 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास चार-पाँच बार पढ़नेपर भी समझ में नहीं आता जिसे समझने के लिए प्रबुद्ध पाठक की आवश्यकता है। अलका सरावगी के उपन्यासों के कथानक का प्रस्तुतीकरण पूर्वदीप्ति, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, डायरी, किस्सागोई, टेलीफोन और कुरियर आदि शैलियों में किया है लेकिन इन सोपानों का पालन करते समय उपन्यास का क्रमिक विकास या उपन्यास की श्रृंखलाबद्धता खो गई है। यह श्रृंखलाबद्धता इन दो उपन्यासों में दिखाई नहीं देती।

भाषा के नए-नए प्रयोग, शैलियों के नए-नए प्रयोग, पत्र, डायरी तथा प्रतीकात्मकता के कारण विवेच्य उपन्यास कलात्मक प्रतीत होते हैं। इन नए-नए प्रयोग तथा श्रृंखलाबद्धता न होने के कारण ये उपन्यास पारंपरिक ढाँचे को तोड़ते हैं। 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में किशोरबाबू की कथा है लेकिन किशोरबाबू की यह कथा उपन्यास में ढूँढनी पड़ती है। उपन्यास पढ़ते समय मुख्य कथा कहाँ गायब होती है पता ही नहीं चलता और अन्य बाते ही सामने आती हैं। जिसे पुन: उपन्यास में तलाशना पड़ता है। उपन्यास के कथानक में बिखराव दिखाई देता है जिसे पढ़ते समय पाठक ऊब जाना स्वाभाविक लगता है। डॉ. क्षितिज धुमाळ के शब्दों में - ''प्रस्तुत उपन्यास में तीन पड़ावों पर किशोरबाबू की कथा को प्रस्तुत किया गया है, परंतु बीच-बीच में यह कथावस्तु कहाँ गायब होती है और अन्य बाते ही सामने आती है, तब कथावस्तु की तलाश करनी पड़ती है। इसमें कथागत बिखराव है।''[1] स्पष्ट है कि 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में कथागत बिखराव है। 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास की तरह 'शेष कादम्बरी' तथा 'कोई बात नहीं' उपन्यासों की कथावस्तु में बिखराव नजर आता है। 'शेष कादम्बरी' उपन्यास में तो संघर्ष और चरमसीमा ही नहीं है। जिसके कारण यह उपन्यास एक नया प्रयोग लगता है। इन उपन्यासों के कथानक में बिखराव

---

1. डॉ. क्षितिज धुमाळ - बीसवीं सदी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक अनुशीलन, पृष्ठ - 230

होने के बावजूद भी इन उपन्यासों की घटनाएँ प्रासंगिक होने के कारण विवेच्य उपन्यासों का महत्त्व मानना पड़ता है। कथानक में अनेक घटना तथा प्रसंगों की उचित योजना की है। ये उपन्यास अपने लक्ष्यप्राप्ति में पूर्णतया सफल हुए हैं। ये उपन्यास जिन घटना तथा प्रसंगों को निर्देशित करते हैं उनके दूवारा मुख्य कथा को स्पष्ट, प्रभावोत्पादक बनाने में पूरी तरह सार्थक सिद्ध होते हैं। विवेच्य उपन्यासों में जीवन की विशेषताओं, राजनीतिक प्रभावों तथा ऐतिहासिक संदर्भों का विस्तृत चित्रण यथार्थता के साथ अंकित हुआ है। इन उपन्यासों में आरंभ से लेकर अंत तक जिज्ञासा, कौतुहल तथा रोचकता बनी रहती है। 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास का आरंभ वर्णनात्मक, 'शेष कादम्बरी' उपन्यास का आरंभ आत्मकथात्मक शैली में और 'कोई बात नहीं' उपन्यास का आरंभ प्रकृति-चित्रण से किया हुआ है।

अंत में कहना सही होगा कि अलका सरावगी के उपन्यास कथानक के पारंपरिक ढाँचे को तोड़कर तथा औपन्यासिक लीक से हटकर होने के बावजूद भी प्रासंगिकता की दृष्टि से विवेच्य उपन्यासों का महत्त्व मानना होगा।

2.3.7.2 पात्र या चरित्र-चित्रण की दृष्टि से विवेच्य उपन्यासों का मूल्यांकन :-

पात्र या चरित्र-चित्रण की दृष्टि से विवेच्य उपन्यासों में पात्रों की भरमार नजर आती है। लेखिका इन पात्रों के माध्यम से समाज की विभिन्न प्रवृत्तियों, मानसिक स्थितियों, विसंगतियों तथा आकांक्षाओं का उद्घाटन करना चाहती है। उपन्यास का फलक (canvas) विस्तृत होने के कारण उन्हें पात्रों की अधिक आवश्यकता होती है। इन उपन्यासों के कुछ पात्र प्रतीक पात्र है। 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में किशोरबाबू भारतीय समाज की पुरूषी मानसिकता का, अमोलक गांधीजी का, शांतनु सुभाषबाबू का प्रतीक है।

अलका सरावगी के उपन्यासों में चित्रित पात्र अंकन की विशेषता यह भी रही है कि यह पात्र अपनी परिस्थिति से संघर्ष तथा टकराहट के साथ विकसित होते हैं। उनके औपन्यासिक चरित्रों में स्वाभाविकता, सप्राणता, सहृदयता, मौलिकता और अनुकूलता आदि गुणों का उचित निर्वाह हुआ है। पात्रों के आंतरिक और बाह्य व्यक्तित्व का विकास भी किया है। साथ ही विश्लेषणात्मक तथा वर्णनात्मक प्रणालियों दूवारा पात्रों का विकास दिखाया है। विवेच्य उपन्यासों में चित्रित पात्र समाज के हर वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं।

15199

अंत में कहना सही होगा कि विवेच्य उपन्यासों में पात्रों की भरमार होने के बावजूद भी लेखिका ने कुछ पात्रों के माध्यम से अपने उद्देश्यों की पूर्ति की है जिसके कारण विवेच्य उपन्यास कलात्मक परिलक्षित होते हैं।

2.3.7.3 संवाद या कथोपकथन की दृष्टि से विवेच्य उपन्यासों का मूल्यांकन :-

अलका सरावगी के उपन्यासों में संवादों का निर्वाह कम मात्रा में हुआ है। विवेच्य उपन्यास के संवाद कहीं-कहीं छोटे और कहीं-कहीं लंबे दिखाई देते हैं। ये संवाद औपन्यासिक जगत् में मौलिक उपलब्धि का सशक्त उदाहरण है। विवेच्य उपन्यासों के संवाद उपन्यास को अपने लक्ष्य तक पहुँचाते हैं, पात्रों के व्यक्तित्व के विविध पहलुओं को भी उजागर करते हैं और देशकाल वातावरण निर्मिति में भी योगदान देते हैं। रोचकता, भावात्मकता, सार्थकता, कौतुहलवर्धकता, स्वाभाविकता और उद्देश्यपूर्णता आदि गुण होने के कारण विवेच्य उपन्यास के संवाद कलात्मक परिलक्षित होते हैं।

'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में किशोरबाबू और उनके बेटे में बहस का उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है -

किशोरबाबू अपने बेटे से पूछते हैं -

''तुम्हारे दादाजी का नाम मालूम है न तुम्हें?' . . .

'हाँ, भूरामलजी' लड़के ने मुँह फुलाकर कहा।

'उनके पिता का नाम?'

'नहीं मालूम।'

'मैं बताता हूँ - केदारनाथजी। उनके पिता - रामविलास जी। उनके पिता का घमंडी लालजी '।''[1]

संवाद कहीं-कहीं अपवाद स्वरूप संक्षिप्त दिखाई देते हैं। उक्त संवाद संक्षिप्त तथा प्रभावशाली हैं। अत: कहना आवश्यक नहीं कि विवेच्य उपन्यासों में संवादों का निर्वाह कम मात्रा में क्यों न हो लेकिन अवश्य हुआ है।

---

1. अलका सरावगी - कलि-कथा : वाया बाइपास, पृष्ठ - 199

2.3.7.4 देशकाल वातावरण की दृष्टि से विवेच्य उपन्यासों का मूल्यांकन :-

विवेच्य उपन्यासों में सामाजिक, ऐतिहासिक, महानगरीय, आर्थिक तथा राजनीतिक परिवेश का प्रभाव दिखाई देता है। देशकाल वातावरण में विश्व के अनेक स्थलों तथा कलकत्ता के विभिन्न भूभागों के चित्रण का ऐसा आभास होता है कि लेखिका वातावरण की सूचना न देकर चल-चित्र की भाँति पाठकों के सामने उनकी समग्र प्रस्तुति कर रही है। यह विशेषता उनके उपन्यासों में समान रूप में पाई जाती है। उनके उपन्यासों में सन् 1857 से लेकर सन् 2000 तक के काल में घटित-घटनाओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत हुआ है। इस काल में घटित सामाजिक, आर्थिक, महानगरीय, ऐतिहासिक तथा राजनीतिक वातावरण के माध्यम से तत्कालीन यथार्थ को अंकित कर लेखिका ने समाज सुधार की माँग की है। मारवाड़ी समाज का खान-पान, रीति-रिवाज, व्यवहार, वेशभूषा, सभ्यता, रहन-सहन, आचार-विचार तथा शादी-ब्याह आदि का चित्रण विवेच्य उपन्यासों में भलि-भाँति चित्रित किया है। महानगर की नारकीय जिंदगी का तथा अर्थ के कारण देश की हुई स्थिति का चित्रण देशकाल वातावरण में हुआ है। राजनीतिक वातावरण का चित्रण भी भलि-भाँति मिलता है। 'कोई बात नहीं' उपन्यास में राजनीतिक वातावरण का अभाव नजर आता है।

निष्कर्षत: कहना सही होगा कि विवेच्य उपन्यासों में सामाजिक, ऐतिहासिक, महानगरीय, आर्थिक तथा राजनीतिक वातावरण का चित्रण कलात्मकता से अंकित है।

2.3.7.5 भाषा-शैली की दृष्टि से विवेच्य उपन्यासों का मूल्यांकन :-

अलका सरावगी ने अपने उपन्यासों में भाषा-शैली के नए-नए प्रयोग किए हैं। उनके उपन्यासों की भाषा भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति है। उनके उपन्यासों में सरल, सशक्त, स्वाभाविक तथा सुबोध खड़ी बोली हिंदी का प्रयोग मिलता है। पात्रानुकूल तथा प्रसंगानुकूल भाषा के प्रयोग के साथ लेखिका ने संस्कृत, अंग्रेजी, अरबी, बंगाली तथा फारसी आदि शब्दों का प्रयोग कर भाषा पर अपना अधिकार प्रमाणित किया है। विवेच्य उपन्यासों की भाषा में कहावतें, मुहावरे लोकगीत और प्रतीक आदि का प्रयोग यथास्थान दृष्टिगोचर होता है। पूर्वदीप्ति, आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, डायरी, टेलीफोन, किस्सागोई और कुरियर

शैली का प्रयोग विवेच्य उपन्यासों में कलात्मकता के साथ अंकित किया है। विवेच्य उपन्यास की भाषा प्रसाद, माधुर्य, सरलता, रोचकता, प्रवाहमयता, आकर्षकता तथा नवीनता आदि गुणों से युक्त नजर आती हैं।

निष्कर्षत: कहना होगा कि विवेच्य उपन्यासों की भाषा-शैली में शैली के नए-नए प्रयोग तथा भाषा के नए-नए प्रयोग कलात्मक तेवर के साथ परिलक्षित होते हैं इसमें संदेह नहीं।

2.3.7.6 उद्‌देश्य की दृष्टि से विवेच्य उपन्यासों का मूल्यांकन :-

अलका सरावगी के उपन्यासों में उद्‌देश्य तत्व का भी उचित निर्वाह हुआ है। ये उपन्यास मानव जीवन का मूल्यांकन करते हैं ही, साथ ही मनोरंजन कर आनंद भी देते हैं। विवेच्य उपन्यास विश्वबंधुत्व की कामना तो करते ही हैं साथ-साथ समाज परिवर्तन की कामना भी करते हैं। विवेच्य उपन्यासों में अनेक प्रधान तथा गौण उद्‌देश्यों की पूर्ति मिलती है। 'कलि-कथा : वाया बाइपास' उपन्यास में आजादी के समय के चित्रण के साथ-साथ आजादी के पूर्ववर्ती और परवर्ती काल की स्थिति-गति को अंकित किया है। पारिवारिक और सामाजिक हिंसा की शिकार हुई युवतियों के उलझनों को सुलझाना, उपेक्षिता, उत्पीड़ित स्त्री को न्याय तथा समानाधिकार दिलाना, नारियों में आत्मविश्वास जगाना, नारी-मुक्ति तथा नारी अधिकार की माँग करना आदि उद्‌देश्यों की पूर्ति हेतु लेखिका ने 'शेष कादंबरी' उपन्यास का सृजन किया है। 'कोई बात नहीं' उपन्यास इन्सान को जीवन जीने की प्रेरणा को रूपायित करता है। अंत में कहना सही होगा कि विवेच्य उपन्यासों में लेखिका ने आदर्शों तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना कर, युगीन व्यापक संदर्भों को रूपायित कर मानव-चेतना जगाने का प्रयास किया है।

निष्कर्षत: कहना सही होगा कि अलका सरावगी के उपन्यासों में तत्वों का कम-अधिक मात्रा में निर्वाह मिलता है। कथा-वस्तु में बिखराव, पात्रों की भरमार, लंबे-लंबे संवाद, देशकाल वातावरण का उचित निर्वाह, भाषा तथा शैली के नए-नए प्रयोग, उद्‌देश्य में वैविध्य होने के बावजूद भी प्रासंगिक घटना तथा प्रसंगों के कारण विवेच्य उपन्यास कलात्मक प्रतीत होते हैं इसमें संदेह नहीं।

2.4 उपन्यास के प्रकार / भेद :

मनुष्य जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाला उपन्यास आज मानव जीवन की तरह बहुमुखी बन गया है। जिसका वर्गीकरण करना आज एक समस्या बन गई है। उसके कोई वर्गीकरण पर एकमत नहीं हो पाया है। आज उपन्यास के भेद अनेक प्रवृत्तियों के आधार पर किए जाते हैं। गोविंद त्रिगुणायत के मतानुसार उपन्यास का वर्गीकरण तीन प्रकार से किया जा सकता है -

"(1) कथा-शैली की दृष्टि से
(2) कथानक की दृष्टि से और
(3) विषय की दृष्टि से आदि।

(1) कथा-शैली की दृष्टि से -

(1) कथात्मक
(2) आत्मकथात्मक
(3) पत्रात्मक

(2) कथानक की दृष्टि से -

(1) घटना-प्रधान
(2) चरित्र-प्रधान

(3) विषय की दृष्टि से -

(1) तिलस्मी, ऐयारी और जासूसी उपन्यास
(2) राजनीतिक उपन्यास
(3) ऐतिहासिक उपन्यास
(4) मनोवैज्ञानिक उपन्यास
(5) आंचलिक उपन्यास और
(6) हास्य रस के उपन्यास आदि।"[1]

आधुनिक काल में उपन्यास के नीति-प्रधान, घटना-प्रधान, इतिहास-प्रधान, मनोविज्ञान-प्रधान, सिद्धांत-प्रधान, चरित्र-प्रधान, समस्या-प्रधान, कथा-प्रधान और

---

1. गोविंद त्रिगुणायत - शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत (द्वितीय भाग), पृष्ठ - 427-433

आत्मकथा -प्रधान के साथ-साथ तिलस्मी, जासूसी, सामाजिक, राजनीतिक, आंचलिक, हास्यरस, यथार्थवादी तथा आदर्शवादी आदि कई प्रकार दिखाई देते हैं। लेकिन हम यहाँ विषय की समय-सीमा ध्यान में रखते हुए तथा अलका सरावगी के उपन्यासों की प्रवृत्तियाँ ध्यान में लेते हुए केवल सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक तथा आंचलिक आदि उपन्यासों के प्रकारों पर विचार-विमर्श करेंगे -

2.4.1 **सामाजिक उपन्यास -**

सामाजिक उपन्यासों में व्यष्टि के साथ-साथ समष्टि का यथार्थ चित्रण होता है। इन उपन्यासों में समाज में व्याप्त रूढ़ि-परंपरा, संस्कार, कुरीतियों का उत्पीड़न, अच्छाइयों-बुराइयों आदि का चित्रण होता है। साथ ही सामयिक युग के विचार, आदर्श और समस्याएँ आदि तत्वों का चित्रण मिलता है। सामाजिक उपन्यास का व्यापक अर्थ स्पष्ट करते हुए डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर कहते हैं - "परिवार, ग्राम, प्रदेश, राज्य, विश्व तथा सामाजिक प्रथाएँ, व्यक्ति और समूह की समस्याएँ, आर्थिक परिस्थितियाँ, राजनीतिक विचारधाराएँ, दार्शनिक सिद्धांत आदि अनेक विषय हैं, जिनमें किसी या किन्हीं को सामाजिक उपन्यास में प्रधानता दी जा सकती है।"[1] कहना आवश्यक नहीं कि सामाजिक उपन्यासों में सर्वहारा वर्ग का चित्रण प्रस्तुत किया जाता है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। रचनाकार समाज से प्रेरणा ग्रहण कर ही साहित्य निर्मिति करता है। आजादी के पूर्व कई सपने देखे थे। बार-बार गरीबी की रेखा हटाने के, जनकल्याण के और सुख-संपन्नता लाने के सारे सपने आजादी मिलने के बाद चकनाचूर हो गए जिसके कारण समाज में अनेक कुरीतियों तथा प्रवृत्तियों को जन्म दिया है। डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय के शब्दों में - "जाति, वर्ग, सम्प्रदाय, धार्मिक भेदभाव, संयुक्त परिवार के ह्रास, शोषक-शोषित के सवाल, किसानों की फटेहाली, नैतिकता-अनैतिकता द्वंद्व, दाम्पत्य जीवन में विघटन, नारी की विवशता, नागरिकों पर शहरीकरण के प्रतिकूल प्रभाव, मूल्य-विघटन, असुरक्षा की भावना, युवा पीढ़ी की पथभ्रष्टता, राजनीति के छल-छद्म आदि को विवृत करने की प्रवृत्ति सामाजिक उपन्यासों में देखी जाती है।"[2] जिसके परिणामस्वरूप समाज में व्यंग्य, करूणा, हास-परिहास, संघर्ष, आक्रमकता और विद्रोह आदि की अभिव्यक्ति

1. डॉ. चंद्रकांत बांदिवडेकर - हिंदी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ-15
2. डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय - स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास का स्वरूप, पृष्ठ - 24

हो रही है। इसके अलावा सामाजिक मूल्य, बदलती नैतिकता, पारिवारिक विघटन, यौन संबंध, समाज में व्याप्त विसंगतियाँ, कुंठा, अन्याय-अत्याचार, करूणा, प्रेम, स्वार्थ, त्याग और सहानुभूति आदि का चित्रण करना भी सामाजिक उपन्यास का वर्ण्य-विषय रहा है। सामाजिक उपन्यासों में सामयिक युग के विचार, आदर्श और समस्याएँ व्यष्टि की न होकर समष्टि के होते हैं। सामाजिक उपन्यास एक तरफ युगीन समस्या को वाणी देते हैं तो दूसरी तरफ समाज में प्रतिष्ठित जीवन मूल्यों की स्थापना कर समाज-परिवर्तन की कामना करते हैं। सामंतीवादी वर्ग, पूँजीवादी वर्ग, शोषक वर्ग, अत्याचारी वर्ग तथा उच्चवर्ग के खिलाफ आवाज उठाने का साहस इन उपन्यासकारों ने किया है।

अंततः कहना सही होगा कि लेखक सामाजिक उपन्यासों में व्यक्ति तथा समाज का वास्तविक दस्तावेज प्रस्तुत कर समाज हित की कामना करता है। सामाजिक यथार्थ तथा वास्तविकता को उभारनेवाले उपन्यास तथा उपन्यासकारों के उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं -

(1) भगवतीचरण वर्मा - 'आखिरी दांव', 'भूले बिसरे चित्र' तथा 'अपने खिलौने' आदि।

(2) यशपाल - 'झूठा-सच'

(3) उपेंद्रनाथ अश्क - 'गिरती दीवारें', 'गर्म राख' तथा 'पत्थर-अलपत्थर' आदि।

(4) रामदरश मिश्र का 'बीज का समय' तथा 'अपने लोग' आदि।

(5) राजेंद्र यादव - 'सारा आकाश' तथा 'उखड़े हुए लोग' आदि।

(6) अलका सरावगी - 'कलि-कथा : वाया बाइपास', 'शेष कादम्बरी' तथा 'कोई बात नहीं' आदि।

2.4.2 ऐतिहासिक उपन्यास :-

अतीत कालीन घटना, पात्र, सभ्यता तथा संस्कृति के सहारे या ज्ञात तथ्यों के आघृत तथ्यों पर पुन:सृजन युगविशेष के चित्रित किया है तब उसे ऐतिहासिक उपन्यास कहते हैं। यह उपन्यास अतीत की घटना द्वारा मानव जीवन के चिंतन को प्रेरणा देते हैं और नवीन प्रयोगों का मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। साथ ही अतीत का पुनरावलोकन कर अतीत-वर्तमान का संतुलन भी रखा जाता है। साहित्य के इतिहास में प्रत्येक युग अपने पूर्ववर्ती युग की प्रतिक्रिया

हुआ करता है जो आनेवाले कल की पूर्वपीठिका बनाता है। इसमें उपन्यासकार ऐतिहासिक वास्तविकता के साथ-साथ वैयक्तिकता एवं काल्पनिकता को भी अंकित कराता है। ऐतिहासिक उपन्यासों में अतीतकालीन घटना, परिस्थिति तथा तत्कालीन वातावरण का पुन:सृजन होता है। डॉ. सत्यपाल चुघ के मतानुसार - "ऐसे उपन्यास जिन में लेखकीय युग से परे के अतीतकालीन घटना-पात्र (कम-से-कम एक या दोनों तत्व) तथा परिस्थितियों के ज्ञात तथ्यों पर आधृत परिकल्पना से तत्कालीन वातावरण का पुनसृर्जन किया गया हो, ऐतिहासिक उपन्यास कहे जाते हैं।"[1] उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि ऐतिहासिक उपन्यासों में अतीत-कालीन घटना, पात्र या परिस्थिति का विश्लेषण होता है। ऐतिहासिक उपन्यासों में उस काल के रीतिरिवाज, सामाजिक दशाएँ, भावनाएँ तथा विचार इतने स्पष्ट मिलते हैं कि जितने उस काल के व्यक्ति के मन में मिले होंगे। किलों, स्तंभों, युद्ध-मैदानों, तत्कालीन भूखण्ड, नदी-नाले और प्रकृति का चित्रण ऐतिहासिक उपन्यासों में मिलता है। प्रस्तुत उपन्यास में प्राचीन पात्रों के नाम, उनके शिष्टाचार, प्राचीन संबोधनवस्तु, जाति, नगर तथा देश के प्राचीनताओं आदि युगीन वातावरण भी साकार किया जाता है। कलात्मक सफलता की दृष्टि से यह उपन्यास बाह्य या अंतरजगत् के समन्वित सह अस्तित्व की माँग करता है। इस उपन्यास के इतिहास भूमि, देश, कालखंड, घटना, पात्र और कल्पना आदि आधारभूत तथ्य होते हैं।

निष्कर्षत: कहना होगा कि ऐतिहासिक उपन्यास अतीतकालीन घटना, पात्र, परिस्थिति तथा कल्पना के माध्यम से तत्कालीन युग-विशेष को चित्रित कर पुन:सृजन किया जाता है तब उसे ऐतिहासिक उपन्यास कहते हैं। उपन्यासकार तथा उनके उपन्यास के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं -

(1) वृंदावनलाल वर्मा - 'मृगनयनी', 'अहिल्याबाई' तथा 'भुवन-विक्रम' आदि।
(2) राघेय राघव - 'मुर्दों का टीला', 'महायात्रा' तथा 'अन्धेरे के जुगनू' आदि।
(3) राहुल सांस्कृत्यायन - 'मधुर स्वप्न' तथा 'दिवादास' आदि।
(4) यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - 'सन्यासी' और 'सुंदरी' आदि। और
(5) हिमांशु श्रीवास्तव - 'सिकन्दर' आदि।

---

1. डॉ. सत्यपाल चुघ - हिंदी ऐतिहासिक उपन्यास प्रतिमान एवं विकासेतिहास, पृष्ठ - 27

2.4.3 मनोवैज्ञानिक उपन्यास -

मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मानव मन के भीतर चलनेवाले कार्य-व्यापारों, उत्पन्न विकारों, मानव-चरित्र की उलझन, ऊहापोह, चिंतन, बाह्य मन तथा आंतरिक मन में होनेवाला द्‌वंद्‌व, क्रिया-व्यापार, नैतिक आचार-विचार, मन में होनेवाली समस्त पीड़ा-बोध और मानसिक क्रिया-कलाप आदि का चित्रण मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में किया जाता है। डॉ. प्रतापनारायण टंडन के मतानुसार - ''मनोवैज्ञानिक उपन्यास मनुष्य के हृदय में स्थित अनुभूतियों के उद्रेक की अभिव्यक्ति करता है जो उसकी वैयक्तिक आत्मनिष्ठा का प्रतीक होती है। अभिव्यक्ति का यह रूप सामान्यत: इतने स्पष्ट और स्वाभाविक रूप में अन्य प्रकार के उपन्यासों में प्राय: नहीं मिलता।''[1] इससे स्पष्ट होता है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यास हृदय में स्थित अनुभूतियों की वैयक्तिक आत्मनिष्ठा का प्रतीक है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में मन की कुंठा, सबलता-दुर्बलता, आत्मान्वेषण, आत्मविश्लेषण, अपनी आस्था-निष्ठा का विश्लेषण स्वाभाविक रूप में दिखाई देता है।

डॉ. प्रतापनारायण टंडन मनोवैज्ञानिक उपन्यास कथानक के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हैं - ''मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास कथानक की बाह्य घटनाओं से इतना सम्बद्‌ध नहीं होता जितना चरित्रों के मानसिक और भावात्मक जीवन से। पात्रों के कार्य-कलाप के मूल प्रेरणास्रोतों का उद्‌घाटन ही मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों की मुख्य चिन्ता रहती है।''[2] स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में पात्रों का कार्य-कलाप तथा पात्रों के मानसिक और भावात्मक जीवन का चित्रण होता है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का लक्ष्य है - मनोवैज्ञानिक पात्रों के मनोविज्ञान की खोज करना।

डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय का कहना है - ''मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का लक्ष्य पात्रों का मनोवैज्ञानिक शोध करना है। व्यावहारिक जीवन में असामान्य आचरण का क्या कारण है। यहाँ यथार्थ आदमी के चित्रण करने का अर्थ है उसके व्यक्तित्व की सारी अन्तर्विरोधी प्रवृत्तियों, जटिल सम्वेदनाओं, विषम मन:स्थितियों का वैविध्य चित्रित करना।''[3] स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में व्यक्ति के मन के क्रिया-कलापों का चित्रण मिलता है।

---

1. डॉ. प्रतापनारायण टंडन - हिंदी उपन्यास कला, पृष्ठ - 94
2. वही, पृष्ठ - 93
3. डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय - स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों का स्वरूप, पृष्ठ - 12

संक्षेप में कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में व्यक्ति के मन का क्रिया-कलाप, द्वंद्व, आंतरिक तथा बाह्य मन का कथ्य-अकथ्य, आत्मनिष्ठा, मन की पीड़ा, उलझन, कुंठा, दमन, चेतन मन तथा अचेत मन आदि का चित्रण किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों तथा उपन्यासों के कुछ महत्त्वपूर्ण उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है -

(1) जैनेंद्र - 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र' तथा 'कल्याणी' आदि।
(2) इलाचंद जोशी - 'सन्यासी', 'प्रेत और छाया' तथा 'पर्दे की रानी' आदि।
(3) अज्ञेय - 'शेखर एक जीवनी' - (भाग एक ओर दो), 'नदी के द्वीप' तथा 'अपने अपने अजनबी' आदि।
(4) भगवती प्रसाद वाजपेयी - 'चलते-चलते', 'पतवार' तथा 'कर्म-पथ' आदि।
(5) डॉ. देवराज - 'पथ की खोज', 'रोडे और पत्थर' तथा 'अजय की डायरी' आदि।

2.4.4 आंचलिक उपन्यास -

किसी अंचल विशेष की समस्त सांस्कृतिक विशेषता, विशिष्ट अंचल की स्थिति, उनके जीवन का सर्वांग चित्रण, सभ्यता, संस्कृति, परिवेश, भाषा, बोली और लोकतत्व आदि का चित्रण जिस उपन्यास में होता है उसे आंचलिक उपन्यास कहते हैं। आँचलिक उपन्यासों में गाँव अंचल का चित्रण साधन न होकर साध्य होता है। इस उपन्यास में लेखक समग्र अंचल-विशेषता को रखने का प्रयास करता है। आँचलिक उपन्यासों में विशिष्ट भू-भाग तथा जाति-वर्ग में रखकर सामाजिक एवं सांस्कृतिक समग्र जीवन-पद्धति को स्थानीय भाषा के माध्यम से अभिव्यक्ति दी जाती है। डॉ. बंसीधर के शब्दों में - "आंचलिक उपन्यास एक ऐसा औपन्यासिक प्रकार है, जिसमें किसी विशिष्ट भू-भाग या अंचल या जातिवर्ग को केंद्र में रखकर, वहाँ के भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवेश से स्पंदित उसकी समग्र-संश्लिष्ट जीवन-पद्धति को स्थानीय रंगतवाली सामान्य भाषा के माध्यम से अत्यंत ही संवेदनशील एवं यथार्थपरक अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया जाता है।"[1] कहना आवश्यक नहीं कि आंचलिक उपन्यासों में विशिष्ट अंचल की समग्र जीवन पद्धति स्थानीय भाषा में

1. डॉ. बंसीधर - हिंदी के आंचलिक उपन्यास : सिद्धांत और समीक्षा, पृष्ठ - 29

यथार्थता के साथ प्रस्तुत की जाती है। आंचलिक उपन्यासों में नीतिसिद्धांतों का खंडन-मंडन कर नवीन मूल्यों का अन्वेषण भी करता है। साथ ही विशिष्ट प्रदेशांचल का व्यावहारिक चित्रण भी होता है। डॉ. प्रतापनारायण टंडन के मतानुसार - "उसमें नीति सिद्धान्तों के खंडन-मंडन या किन्हीं नवीन मानव मूल्यों के अन्वेषण की वृत्ति भी प्रधान नहीं होती उसमें प्राथमिक उद्देश्य यह होता है कि कथाकार अपने निर्दिष्ट प्रदेशांचल के व्यावहारिक जीवन का सच्चा खाका उपस्थित करे।"[1] स्पष्ट है कि निर्दिष्ट प्रदेशांचल के व्यावहारिक जीवन का सच्चा चित्रण आंचलिक उपन्यासों में होता है।

आंचलिक उपन्यासों में वहाँ के स्थानीय उत्सव, पर्व, संस्कार, परंपरा, स्थानीय लोगों की विशिष्ट प्रवृत्ति तथा लोककथा आदि लोक-संस्कृति के विविध उपादानों का अंकन होता है। इस उपन्यास के पात्र ऐसे होते हैं जो संपूर्ण आंचलिक विशेषता को संपृक्त करते हो। ऐसे उपन्यासों में नायक पात्र न होकर विशिष्ट अंचल होता है। आंचलिक उपन्यास में भौगोलिक तथा प्राकृतिक परिवेश उसका अनिवार्य अंग है। आंचलिक उपन्यासों में विशिष्ट अंचल का खान-पान, वेश-भूषा तथा जीवन मूल्यों का चित्रण होता है। इस संदर्भ में डॉ. बंसीधर का कहना सही है - "किसी अंचल के सामाजिक जीवन के नियमन और संचालन में वहाँ का भौगोलिक प्राकृतिक परिवेश विशेष कारगर शक्ति होता है। गाँव या अंचल के संस्कारों, परंपराओं, मान्यताओं, विश्वासों, खान-पान, वेशभूषा एवं जीवन-मूल्यों तथा वहाँ की सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में परिवेश की भूमिका का सर्वाधिक योग रहता है।"[2] आंचलिक उपन्यासों में लोकोक्तियाँ, मुहावरे, ध्वनियों तथा शब्दों के विविध अर्थ-छवियों आदि भाषा प्रयोग भी मिलते हैं। आंचलिक उपन्यासों में विवरणात्मक, भावात्मक तथा चित्रात्मक शैली का प्रयोग दिखाई देता है। अंतत: कहना सही होगा कि आंचलिक उपन्यास में विशिष्ट अंचल की समग्र जीवन पद्धति को स्थानीय भाषा में यथार्थता के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

कुछ आंचलिक उपन्यासों के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं -

(1) फणीश्वरनाथ - रेणु - 'मैला आँचल' तथा 'परिती परिकथा' आदि।

(2) नागार्जुन - 'बलचनामा' तथा 'दु:खमोचन' आदि।

(3) उदय शंकर भट्ट -'सागर लहरे और मनुष्य' तथा 'लोक-परलोक' आदि।

---

1. डॉ. प्रतापनारायण टंडन - हिंदी उपन्यास कला, पृष्ठ - 125
2. डॉ. बंसीधर - हिंदी के आंचलिक उपन्यास : सिद्धांत और समीक्षा, पृष्ठ - 74

(4) अमृतलाल नागर - 'सेठ बांकेमल' तथा 'बूँद और समुद्र' आदि।

(5) राही मासूम रजा - 'आधा गाँव' और

(6) जगदीश चंद्र - 'धरती धन न अपना' आदि।

2.4.5 उपन्यास के प्रकार की दृष्टि से विवेच्य उपन्यासों का मूल्यांकन -

उपन्यास प्रकार की दृष्टि से अलका सरावगी के उपन्यास सामाजिक उपन्यासों की कोटि में आते हैं। लेखिका ने अपने उपन्यासों में अधिकतर समाज का चित्रण किया है। उनके उपन्यासों में उच्चवर्ग, मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग आदि का चित्रण मिलता है। विवेच्य उपन्यासों के पात्र समाज के हर वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। समाज में होनेवाली विसंगतियाँ, रूढ़ि-परंपरा तथा कुप्रथाओं का पर्दाफाश कर समाज को सही राह पर लाने की कोशिश लेखिका सरावगी जी ने अपने उपन्यासों में की है। समाज में व्याप्त दहेज-प्रथा, सती-प्रथा, बलि-प्रथा, पूजा-पाठ, टोना-टोटका तथा अंधविश्वास आदि बातों का खुलकर विरोध किया है। मारवाड़ी समाज का खान-पान, रहन-सहन, रीति-रिवाज, वेशभूषा तथा शादी-ब्याह का चित्रण किया है।

उन्होंने अपने उपन्यासों में विधवा-विवाह की माँग की है। नारी की पीड़ा, दु:ख तथा दर्द का चित्रण कर नारी-मुक्ति तथा नारी अधिकार की मांग की है। स्त्रियों को पुरूषों दूवारा देह समझने की मानसिकता में परिवर्तन लाना, उपेक्षिता, उत्पीड़ित स्त्री को न्याय दिलाना, स्त्रियों में आत्मविश्वास जगाना, उनको अकेलापन तथा आत्महत्या जैसी भयावह समस्या से दूर करना और उन्हें समाज में समानाधिकार देना विवेच्य उपन्यासों का प्रधान प्रयोजन दिखाई देता है। लेखिका पुरूष वर्चस्व समाज की विसंगतियां, अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के लिए नारी तथा पुरूषों को प्रेरणा देना, वेश्याओं को अपने अधिकार दिलाना आदि को चित्रित कर सामाजिक परिवर्तन की अपेक्षा रखती है। समाज में व्याप्त समस्या तथा राष्ट्र की समस्याओं को सुलझाने के लिए 'बाइपास' का रास्ता अपनाने का संदेश दिया है। समाज में रहते हुए मनुष्य को कोशिश करते रहना चाहिए । साथ ही ये उपन्यास इन्सान को हार न मानकर जीवन जीने की प्रेरणा भी देते हैं। अत: कहना होगा कि लेखिका ने गांधीवादी विचारों को दोहराकर समाज परिवर्तन की पुरजोर हिमायत की है।

निष्कर्ष :

अलका सरावगी के उपन्यासों के स्वरूपगत विवेचन का अध्ययन करने के उपरांत जो निष्कर्ष सामने आए हैं, वे इस प्रकार हैं -

1. उपन्यास के स्वरूप के दृष्टि से ये उपन्यास पारंपरिक ढाँचे को तोड़नेवाले हैं। लेखिका ने स्वयंभू 'फार्म' अपनाने के कारण ये उपन्यास 'फार्म' की दृष्टि से आधुनिक, प्रयोगात्मक तथा कलात्मक परिलक्षित होते हैं। उपन्यास के तत्वों के दृष्टि से विवेच्य उपन्यास पारंपरिक ढाँचे को तोड़ते हैं। लेखिका ने अपने उपन्यासों में तत्व की दृष्टि से एक नया प्रयोग किया है। कथावस्तु में बिखराव, पात्रों की भरमार, लंबे-लंबे संवादों की योजना होने के बावजूद भी कुछ समकालीन घटना, परिवेश तथा प्रसंगों के कारण विवेच्य उपन्यास प्रासंगिक परिलक्षित होते हैं।
2. देशकाल वातावरण, भाषा-शैली और उद्देश्य आदि तत्वों का उचित निर्वाह विवेच्य उपन्यासों में लक्षित होता है। देशकाल वातावरण में सामाजिक, ऐतिहासिक, महानगरीय, आर्थिक तथा राजनीतिक वातावरण का चित्रण कलात्मकता से अंकित है। विवेच्य उपन्यासों में भाषा तथा शैली के नए-नए प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं। विवेच्य उपन्यासों के उद्देश्य तत्व में वैविध्य नजर आता है।
3. अंत में लेखिका ने आदर्श तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना कर, युगीन व्यापक संदर्भों को रूपायित कर मानव-चेतना जगाने का प्रयास किया है जिसके कारण विवेच्य उपन्यास कलात्मक प्रतीत होते हैं। निष्कर्षत: कहना होगा कि औपन्यासिक तत्वों की दृष्टि से विवेच्य उपन्यास नए-नए प्रयोग के बावजूद भी कलात्मक है इसमें संदेह नहीं।
4. उपन्यास के प्रकारों की दृष्टि से अलका सरावगी के उपन्यास सामाजिक उपन्यासों की कोटि में आते हैं। विवेच्य उपन्यास समाज में व्याप्त विसंगतियाँ, कुरीतियाँ तथा रूढ़ि-परंपराओं का पर्दाफाश कर समाज परिवर्तन का दृढ़तापूर्वक समर्थन करते हैं। अंत में कहना सही होगा कि औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से अलका सरावगी के उपन्यास कलात्मक हैं इसमें दो राय नहीं।

* * * *